समन्वय का अमोघ दर्शन : अनेकान्त

उपाध्याय श्री अमर मुनि

भगवान् महावीर ने जितनी गहराई के साथ अहिंसा और अपरिग्रह का विवेचन किया, अनेकान्त-दर्शन के चिंतन में भी वे उतने ही गहरे उतरे। अनेकान्त को न केवल एक दर्शन के रूप में, किन्तु सर्वमान्य जीवन धर्म के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय महावीर को ही है। अहिंसा और अपरिग्रह के चिन्तन में भी उन्होंने अनेकान्त-दृष्टि का प्रयोग किया। प्रयोग ही क्यों, यहां तक कहा जा सकता है कि अनेकान्त-रहित अहिंसा और अपरिग्रह भी महावीर को मान्य नहीं थे।

आप शायद चौंकेंगे यह कैसे ? किंतु वस्तुस्थिति यही है। चूंकि प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक सत्ता, प्रत्येक स्थिति और प्रत्येक विचार अनन्तधर्मात्मक है। उसके विभिन्न पहलू या विभिन्न पक्ष होते हैं। उन पहलूओं और पक्षों पर विचार किए बिना यदि हम कुछ निर्णय करते हैं, तो यह उस वस्तु-तत्त्व के प्रति स्वरूपघात होगा, वस्तुविज्ञान के साथ अन्याय होगा और स्वयं अपनी ज्ञान-चेतना के साथ भी एक धोखा होगा। किसी भी वस्तु के तत्त्व-स्वरूप पर चिंतन करने से पहले हमें अपनी दृष्टि को पूर्वाग्रहों से मुक्त, स्वतंत्र और व्यापक बनाना होगा, उसके प्रत्येक पहलू को अस्ति, नास्ति आदि विभिन्न विकल्पों द्वारा परखना होगा, तभी हम उसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। अहिंसा और अपरिग्रह के विषय में भी यही बात है, इसलिए मैंने कहा—महावीर के अहिंसा और अपरिग्रह भी अनेकांतात्मक थे।

अहिंसात्मक अनेकांतवाद का एक उदाहरण लीजिए। भगवान् महावीर ने साधक के लिए सर्वथा हिंसा का निषेध किया—**सव्वाओ पाणाइवायाओ विरमणं**। किसी भी प्रकार की हिंसा का समर्थन उन्होंने नहीं किया। किंतु जनकल्याण की भावना से किसी उदात्त ध्येय की प्राप्ति के लिए तथा वीतराग जीवनचर्या में भी कभी-कभी परिस्थितिवश अनचाहे भी जो सूक्ष्म या स्थूल प्राणिघात हो जाता है, उस विषय में उन्होंने कभी एकांत निवृत्ति का आग्रह नहीं किया, अपितु व्यवहार में उस प्राणिहिंसा को हिंसा स्वीकार करके भी उसे निश्चय में हिंसा की परिधि से मुक्त माना। उन्होंने अहिंसा की मौलिक तत्त्व-दृष्टि से बाहर दृश्यमान् प्राणिवध को नहीं, किंतु रागद्वेषात्मक अन्तर्वृत्ति को—प्रमत्तयोग **पमायं कम्ममाहंसु** को ही हिंसा बताया, कर्मबन्धन का हेतु कहा, यही उनका अहिंसा के क्षेत्र में अनेकांतवादी चिंतन था।

परिग्रह और अपरिग्रह के विषय में भी महावीर बहुत उदार और स्पष्ट थे। यद्यपि जहां परिग्रह की गणना की गई, वहां वस्त्र, पात्र, भोजन, भवन आदि बाह्य वस्तुओं को, यहां तक कि शरीर को भी परिग्रह की परिगणना में लिया गया, किन्तु जहां परिग्रह का तात्त्विक पक्ष आया, वहां उन्होंने मूर्च्छा भाव के रूप में परिग्रह की एक स्वतंत्र एवं व्यापक व्याख्या की। महावीर वस्तुवादी नहीं, भाववादी थे, अतः उनका अपरिग्रह का सिद्धान्त बाह्य जड़-वस्तुवाद में कैसे उलझ जाता ? उन्होंने स्पष्ट घोषणा की—वस्तु परिग्रह नहीं, भाव (ममता) ही परिग्रह है। **मुच्छा परिग्गहो** मन की मूर्च्छा, आसक्ति और रागात्मक विकल्प—यही परिग्रह है, बन्धन है।

इसी प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, चिन्तन के हर नए मोड़ पर महावीर 'हां' और 'ना' के साथ चले। उनका उत्तर अस्ति-नास्ति के साथ अपेक्षापूर्वक होता था। एकान्त अस्ति या एकान्त नास्ति जैसा निरपेक्ष कुछ भी उनके तत्त्व-दर्शन में न था।

अपने शिष्यों से महावीर ने स्पष्ट कहा था—"सत्य अनन्त है, विराट् है। कोई भी अल्पज्ञानी सत्य को सम्पूर्ण रूप से जान नहीं सकता। जो जानता है वह भी उसका केवल एक पहलू होता है, एक अंश होता है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी, जो सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार कर लेता है, वह भी उस ज्ञान सत्य को वाणी द्वारा पूर्ण रूप से अविकल व्यक्त नहीं कर सकता।" इस स्थिति में सत्य को संपूर्ण रूप से जानने का और समग्र रूप से कथन करने का दावा कौन कर सकता है ? हम जो कुछ देखते हैं, वह एकपक्षीय होता है और जो कुछ कथन करते हैं, वह भी एकपक्षीय ही है। वस्तुसत्य के सम्पूर्ण स्वरूप को न हम एक साथ पूर्ण रूप से देख सकते हैं, न व्यक्त कर सकते हैं, फिर अपने दर्शन को एकांत रूप से पूर्ण, यथार्थ और अपने कथन को एकांत सत्य करार देकर दूसरों के दर्शन और कथन को असत्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घोषित करना, क्या सत्य के साथ अन्याय नहीं है ?

इस तथ्य को हम एक अन्य उदाहरण से भी समझ सकते हैं। एक विशाल एवं उत्तुंग सुरम्य पर्वत है, समझ लीजिए हिमालय है। अनेक पर्वतारोही विभिन्न मार्गों से उस पर चढ़ते हैं और भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर से उसके चित्र लेते हैं। कोई पूर्व से तो कोई पश्चिम से, कोई उत्तर से तो कोई दक्षिण से। यह तो निश्चित है कि विभिन्न दिशाओं से लिए गए चित्र परस्पर एक दूसरे से कुछ भिन्न ही होंगे, फलस्वरूप देखने में वे एक दूसरे से विपरीत ही दिखाई देंगे। इस पर यदि कोई हिमालय की एक दिशा के चित्र को ही सही बताकर अन्य दिशाओं के चित्रों को झूठा बताये या उन्हें हिमालय के चित्र मानने से ही इन्कार कर दे, तो उसे आप क्या कहेंगे ?

वस्तुतः सभी चित्र एकपक्षीय हैं। हिमालय की एकदेशीय प्रतिच्छवि ही उनमें अंकित है। किन्तु हम उन्हें असत्य और अवास्तविक तो नहीं कह सकते। सब चित्रों को यथाक्रम मिलाइए तो हिमालय का एक पूर्ण रूप आपके सामने उपस्थित हो जायेगा। खण्ड-खण्ड हिमालय एक अखण्ड आकृति ले लेगा और इसके साथ हिमालय के दृश्यों का खण्ड-खण्ड सत्य एक अखण्ड सत्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति देगा।

यही बात विश्व के समग्र सत्यों के सम्बन्ध में है। कोई भी सत्य हो, उसकी एकपक्षीय दृष्टि को लेकर अन्य दृष्टिकोणों का अपलाप या विरोध नहीं होना चाहिए, किन्तु उन परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले दृष्टिकोणों के यथार्थ समन्वय का प्रयत्न होना चाहिए। दूसरों को असत्य घोषित कर स्वयं को ही सत्य का एकमात्र ठेकेदार बताना, एक प्रकार का अज्ञानपूर्ण अन्ध अहं है, दंभ है, छलना है। भगवान् महावीर ने कहा है—सम्पूर्ण सत्य को समझने के लिए सत्य के समस्त अंगों का अनाग्रहपूर्वक अवलोकन करो और फिर उनका अपेक्षापूर्वक कथन करो।

अनेकान्त और स्याद्वाद

भगवान् महावीर की यह चिंतन-शैली अपेक्षावादी, अनेकांतवादी शैली थी और उनकी कथनशैली स्याद्वाद या विभज्यवाद—**विभज्जवायं च वियागरेजा**—के नाम से प्रचलित हुई। अनेकान्त वस्तु में अनन्त-धर्म की तत्वदृष्टि रखता है, अतः वह वस्तुपरक होता है और स्याद्वाद अनन्तधर्मात्मक वस्तु के स्वरूप का अपेक्षाप्रधान वर्णन है, अतः वह शब्दपरक होता है। जनसाधारण इतना सूक्ष्म-भेद लेकर नहीं चलता, अतः वह दोनों को पर्यायवाची मान लेता है। वैसे दोनों में ही अनेकांत का स्वर है।

जन-सुलभ भाषा में एक उदाहरण के द्वारा महावीर के अनेकांत एवं स्याद्वाद का स्वरूप इस प्रकार समझा जा सकता है—आप जब एक कच्चे आम को देखते हैं, तो सहसा कह उठते हैं—आम हरा है, उसको चखते हैं तो कहते हैं—आम खट्टा है। इस कथन में आम में रहे हुए अन्य गंध, स्पर्श आदि वर्तमान गुण-धर्मों की तथा भविष्य में परिवर्तित होने वाले पीत एवं माधुर्य आदि परिणमन-पर्यायों की सहज उपेक्षा-सी हो गई है, निषेध नहीं, उन्हें गौण कर दिया गया है और वर्तमान में जिस वर्ण एवं रस का विशिष्ट अनुभव हो रहा है, उसी की अपेक्षा से आम को हरा और खट्टा कहा गया है। आम के सम्बन्ध में यह सत्य कथन है, क्योंकि उसमें अनेकांतमूलक स्वर है। किन्तु यदि कोई कहे कि आम हरा ही है, खट्टा ही है, तो यह एकान्त आग्रहवादी कथन होगा। 'ही' के प्रयोग में वर्तमान एवं भविष्यकालीन अन्य गुण-धर्मों का सर्वथा निषेध है, इतर सत्य का सर्वथा अपलाप है, एक ही प्रतिभासित आंशिक सत्य का आग्रह है और जहां इस तरह का आग्रह होता है। वहां आंशिक सत्य भी सत्य न रहकर असत्य का चोला पहन लेता है। इसलिए महावीर ने प्रतिभासित सत्य को स्वीकृति देकर भी, अन्य सत्यांशों को लक्ष्य में रखते हुए आग्रह का नहीं, अनाग्रह का उदार दृष्टिकोण ही दिया।

लोक-जीवन के व्यवहार क्षेत्र में भी हम 'ही' का प्रयोग करके नहीं, किन्तु 'भी' का प्रयोग करके ही अधिक सफल और संतुलित रह सकते हैं। कल्पना करिए, आपके पास एक प्रौढ़ व्यक्ति खड़ा है, तभी कोई एक युवक आता है और उसे पूछता है—"भैया ! किधर जा रहे हो ?" दूसरे ही क्षण एक बालक दौड़ा-दौड़ा आता है और पुकारता है—"पिताजी ! मेरे लिए मिठाई लाना।" तभी कोई वृद्ध पुरुष उधर आ जाता है और वह उस प्रौढ़ व्यक्ति को पूछता है—"बेटा ! इस धूप में कहां चले···?" इस प्रकार अन्य भी अनेक व्यक्ति आते हैं, और कोई उसे चाचा कहता है, कोई मामा, कोई मित्र और कोई भतीजा।

आप आश्चर्य में तो नहीं पड़ेंगे ! यह क्या बात है ? एक ही व्यक्ति किसी का भाई है, किसी का भतीजा है, किसी का बेटा है और किसी का बाप है। बाप है तो बेटा कैसे ? और बेटा है तो बाप कैसे ? इसी प्रकार चाचा और भतीजा भी एक ही व्यक्ति एक साथ कैसे हो सकता है ? ये सब रिश्ते-नाते परस्पर विरोधी हैं, और दो विरोधी तत्व एक में कैसे घटित हो सकते हैं ? उक्त शंका एवं भ्रम का समाधान अपेक्षावाद में है। अपेक्षावाद वस्तु को विभिन्न अपेक्षाओं, दृष्टि-बिन्दुओं से देखता है। इसके लिए वह 'ही' का नहीं, 'भी' का प्रयोग करता है। जो बेटा है, वह सिर्फ किसी का बेटा ही नहीं, किसी का बाप भी है। वह सिर्फ किसी का चाचा ही नहीं, किसी का भतीजा भी है। यही बात 'मामा' आदि के सम्बन्ध में है। यदि हम 'ही' को ही पकड़ कर बैठ जाएंगे तो सत्य की रक्षा नहीं कर सकेंगे। एकान्त 'ही' का प्रयोग अपने से भिन्न समस्त सत्यों को झुठला देता है, जबकि 'भी' का प्रयोग अपने द्वारा प्रस्तुत सत्य को अभिव्यक्ति देता हुआ भी दूसरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्यों को भी बगल में मूक एवं गौण स्वीकृति दिये रहता है। अतः किसी एक पक्ष एवं एक सत्यांश के प्रति एकान्त अन्ध आग्रह न रखकर उदारतापूर्वक अन्य पक्षों एवं सत्यांशों को भी सोचना-समझना और अपेक्षापूर्वक उन्हें स्वीकार करना, यही है महावीर का अनेकांत-दर्शन।

भगवान् महावीर ने कहा—किसी एक पक्ष की सत्ता स्वीकार भले ही करो, किन्तु उसके विरोधी जैसे प्रतिभासित होने वाले (सर्वथा विरोधी नहीं) दूसरे पक्ष की भी जो सत्ता है, उसे झुठलाओ मत। विपक्षी सत्य को भी जीने दो, चूंकि देश-काल के परिवर्तन के साथ आज का प्रच्छन्न सत्यांश कल प्रकट हो सकता है, उसकी सत्ता, उसका अस्तित्व व्यापक एवं उपादेय बन सकता है—अतः हमें दोनों सत्यों के प्रति जागरूक रहना है, व्यक्त सत्य को स्वीकार करना है, साथ ही अव्यक्त सत्य को भी। हां, देश, काल, व्यक्ति एवं स्थिति के अनुसार उसकी कथंचित् गौणता, सामयिक उपेक्षा की जा सकती है, किन्तु सर्वथा निषेध नहीं।

भगवान् महावीर का यह दार्शनिक चिंतन, सिर्फ दर्शन और धर्म के क्षेत्र में ही नहीं, किंतु संपूर्ण जीवन को स्पर्श करने वाला चिंतन है। इसी अनेकांतदर्शन के आधार पर हम गरीबों को, दुर्बलों को और अल्पसंख्यकों को न्याय दे सकते हैं, उनके अस्तित्व को स्वीकार कर उन्हें भी विकसित होने का अवसर दे सकते हैं। आज विभिन्न वर्गों में, राष्ट्र-जाति-धर्मों में जो विग्रह, कलह एवं संघर्ष हैं, उसका मूल कारण भी एक दूसरे के दृष्टिकोण को न समझना है, वैयक्तिक आग्रह एवं हठ है। अनेकान्त ही इन सब में समन्वय स्थापित कर सकता है। अनेकान्त संकुचित एवं अनुदार दृष्टि को विशाल बनाता है, उदार बनाता है और विशालता, उदारता ही परस्पर सौहार्द, सहयोग, सद्भावना एवं समन्वय का मूल-प्राण है।

अनेकांतवाद वस्तुतः मानव का जीवन-धर्म है, समग्र मानव-जाति का जीवन-दर्शन है। आज के युग में इसकी और भी आवश्यकता है। समानता और सहअस्तित्व का सिद्धान्त अनेकांत के बिना चल ही नहीं सकेगा। उदारता और सहयोग की भावना तभी बलवती होगी, जब हमारा चिंतन अनेकांतवादी होगा। भगवान् महावीर के व्यापक चिंतन की यह समन्वयात्मक देन—धार्मिक और सामाजिक जगत् में, बाह्य और अन्तर्जीवन में सदा-सर्वदा के लिए एक अद्भुत देन मानी जा सकती है। अस्तु, हम अनेकान्त को समग्र मानवता के सहज विकास की, विश्व-जनमंगल की धुरी भी कह सकते हैं।

जइ जिणमयं पवंजह ता मा ववहारणिच्छये मुअह।
एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुण तच्चं॥
चरणकरणप्पहाणा ससमय परमत्वमुक्कवावारा।
चरणकरणं ससारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति॥
णिच्छय मालंबंता णिच्छयदो णिच्छयं अजाणंता।
णासिति चरणकरणं वाहिरकरणालसा केई॥

आचार्यों ने कहा है—यदि तुम जिनमत को चाहते हो, तो **व्यवहार** और **निश्चय में** से किसी भी नय को मत छोड़ो। **व्यवहार** के बिना **तीर्थ** का तथा **निश्चय** के बिना **तत्त्व** का लोप हो जाता है। यह न मानकर जो व्यक्ति केवल बाह्य-चरित्र को प्रधान मानता है, वह वास्तव में आत्मकल्याण के व्यापार से रहित है। ऐसा व्यक्ति चरण-क्रिया को ही आत्म-सिद्धि का सार समझ लेता है। इसी प्रकार जो केवल **निश्चयनय** का ही अवलम्बन लेने वाला है यह निश्चय है कि वह **निश्चयनय** को नहीं समझता। ऐसा व्यक्ति स्वयं बाह्य-चारित्र में आलसी हो जाता है और **चारित्र-धर्म** को नष्ट कर देता है।

भाव यह है कि **निश्चयहीन-व्यवहार** निराधार है और **व्यवहारहीन-निश्चय** अवास्तविक है अर्थात् सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए **व्यवहार** और **निश्चय**—इन दोनों दृष्टियों में सन्तुलन रखना आवश्यक है।

(आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज कृत उपदेशसारसंग्रह, भाग-६, दिल्ली, वीरनि० सं० २४९० से उद्धृत)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org